

भारतीय समाज में कार्यरत महिलाओं की बदलती भूमिका: परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य संतुलन: एक विश्लेषणात्मक शोध अध्ययन

¹Priti Gupta, ²Dr. Yogesh Kumar

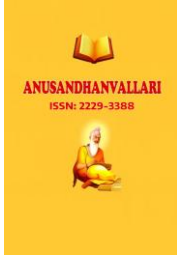
¹Research Scholar, Department of Arts, Faculty of Humanities, Mangalayatan University, Aligarh, UP

²Supervisor, Department of Arts, Faculty of Humanities, Mangalayatan University, Aligarh, UP

सारांश (Abstract)

पिछले तीन दशकों में भारतीय समाज में कामकाजी महिलाओं की भूमिका में अभूतपूर्व परिवर्तन देखा गया है। शिक्षा के प्रसार, आर्थिक उदारीकरण, शहरीकरण तथा वैश्वीकरण जैसे कारकों ने महिलाओं को घर की चारदीवारी से निकालकर कार्यस्थल के व्यापक क्षेत्र में प्रवेश दिलाया है। आज महिलाएँ चिकित्सा, इंजीनियरिंग, सूचना प्रौद्योगिकी, प्रशासन, शिक्षा, बैंकिंग तथा उद्यमिता सहित लगभग हर क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। परंतु इस आर्थिक सशक्तीकरण के साथ-साथ उन्हें परिवार और कार्यस्थल के मध्य संतुलन बनाने की एक जटिल चुनौती का भी सामना करना पड़ रहा है। पारंपरिक सामाजिक संरचना में महिला से घरेलू उत्तरदायित्वों की अपेक्षा आज भी प्रबल है, जबकि कार्यस्थल पर पेशेवर दक्षता और प्रतिबद्धता की माँग भी निरंतर बढ़ रही है। इस दोहरी भूमिका के कारण महिलाओं में मानसिक तनाव, थकान, अपराध-बोध तथा समय के अभाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय समाज में कामकाजी महिलाओं की बदलती भूमिका का ऐतिहासिक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य से विश्लेषण करता है तथा परिवार व कार्यस्थल के बीच संतुलन स्थापित करने में आने वाली चुनौतियों, उपलब्ध सहायक तंत्रों तथा संभावित समाधानों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करता है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों- शोध पत्रिकाओं, सरकारी रिपोर्टों, जनगणना आँकड़ों तथा विद्वानों के पूर्व अध्ययनों पर आधारित है। निष्कर्षतः यह पाया गया कि संतुलन की समस्या केवल व्यक्तिगत प्रबंधन का विषय नहीं, अपितु सामाजिक मानसिकता, संस्थागत नीतियों तथा पारिवारिक सहयोग की सम्मिलित उपज है, जिसके समाधान हेतु बहुस्तरीय प्रयासों की आवश्यकता है।

बीज-शब्द (Keywords): कामकाजी महिला, कार्य-जीवन संतुलन, लैंगिक भूमिका, परिवार, कार्यस्थल, सामाजिक परिवर्तन, महिला सशक्तीकरण

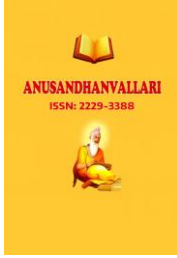


1. प्रस्तावना

भारतीय समाज सदियों से पितृसत्तात्मक ढाँचे पर आधारित रहा है, जिसमें स्त्री की भूमिका मुख्यतः गृहस्थी, संतानोत्पत्ति एवं परिवार की देखभाल तक सीमित मानी जाती रही है। स्वतंत्रता-पूर्व काल में महिलाओं की शिक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता अत्यंत सीमित थी, और समाज में उनकी पहचान प्रायः किसी पुरुष- पिता, पति अथवा पुत्र- के सापेक्ष ही निर्धारित होती थी। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संवैधानिक समानता, शिक्षा के प्रसार, औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा 1991 के आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय समाज की संरचना में गहरा परिवर्तन ला दिया। इन परिवर्तनों ने महिलाओं के लिए शिक्षा एवं रोजगार के नए द्वार खोले, जिसके परिणामस्वरूप आज महिलाएँ हर क्षेत्र में- चाहे वह विज्ञान हो, प्रशासन हो, चिकित्सा हो अथवा सूचना प्रौद्योगिकी- अपनी उपस्थिति सुदृढ़ता से दर्ज करा रही हैं।

परंतु यह उल्लेखनीय है कि आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के बावजूद घरेलू क्षेत्र में उनकी पारंपरिक भूमिका में उतना परिवर्तन नहीं आया जितना अपेक्षित था। समाजशास्त्रियों ने इस स्थिति को प्रायः "दोहरा बोझ" अथवा "दूसरी पारी" (Second Shift) की संज्ञा दी है, जिसका आशय यह है कि कार्यालय में आठ-नौ घंटे कार्य करने के बाद महिला को घर लौटकर पुनः घरेलू दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है। इस प्रकार कामकाजी महिला के जीवन में समय, ऊर्जा तथा भावनात्मक संसाधनों का द्वंद्व निरंतर बना रहता है। यह शोध-पत्र इसी द्वंद्व की पृष्ठभूमि में भारतीय कामकाजी महिलाओं की बदलती भूमिका, उनके समक्ष उपस्थित चुनौतियों तथा संतुलन स्थापित करने के उपायों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

भारत विविधताओं का देश है- यहाँ ग्रामीण एवं शहरी जीवन-शैली में, विभिन्न राज्यों की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं में तथा आर्थिक वर्गों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। अतः "कामकाजी महिला" की स्थिति को किसी एक रूप में सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता। एक उच्च-मध्यवर्गीय शहरी महिला जो बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्यरत है, उसकी चुनौतियाँ एक ग्रामीण महिला जो खेतों में श्रम करती है अथवा असंगठित क्षेत्र में कार्य करती है, से भिन्न होती हैं। इस विविधता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तरों की महिलाओं की स्थिति का समग्र चित्रण करने का प्रयास करता है।



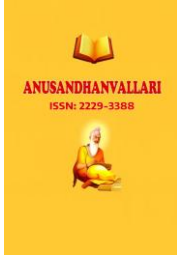
2. साहित्य समीक्षा

कामकाजी महिलाओं की भूमिका एवं कार्य-जीवन संतुलन के विषय पर देश-विदेश में पर्याप्त शोध कार्य हुआ है। अर्ली हॉक्सचाइल्ड (Arlie Hochschild) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में "दूसरी पारी" (The Second Shift) की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने दर्शाया कि कामकाजी महिलाएँ कार्यालय के कार्य के अतिरिक्त घर पर भी अवैतनिक श्रम करती हैं, जिससे उनके विश्राम एवं व्यक्तिगत समय में भारी कमी आती है। भारतीय संदर्भ में नीरा देसाई एवं मैत्रेयी कृष्णराज जैसी समाजशास्त्रियों ने भारतीय महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर विस्तृत कार्य किया है और यह स्पष्ट किया है कि भारतीय पारिवारिक संरचना में लैंगिक श्रम-विभाजन आज भी अत्यंत असमान है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) तथा आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS) के आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत में महिला श्रम-बल भागीदारी दर (Female Labour Force Participation Rate) विश्व के अन्य विकासशील देशों की तुलना में अपेक्षाकृत कम रही है, यद्यपि हाल के वर्षों में इसमें क्रमिक सुधार देखा गया है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की रिपोर्टों में भी भारत में महिलाओं की अवैतनिक देखभाल-कार्य (Unpaid Care Work) में भागीदारी को पुरुषों की तुलना में कई गुना अधिक बताया गया है, जो कार्य-जीवन संतुलन की समस्या को उजागर करता है।

साथ ही, अवैतनिक देखभाल-श्रम के आर्थिक मूल्यांकन से संबंधित अध्ययनों ने यह रेखांकित किया है कि महिलाओं द्वारा किए जाने वाले घरेलू एवं देखभाल-कार्य को यदि मौद्रिक मूल्य दिया जाए, तो यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एक विशाल किंतु सामान्यतः अदृश्य योगदान सिद्ध होता है, जो सकल घरेलू उत्पाद की परंपरागत गणना पद्धति में सम्मिलित नहीं किया जाता। इसी प्रकार, संगठन-व्यवहार के क्षेत्र में हुए अध्ययनों ने "कार्य-परिवार संघर्ष" (Work-Family Conflict) तथा "कार्य-परिवार संवर्धन" (Work-Family Enrichment) की अवधारणाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि यदि उचित सहयोग एवं संसाधन उपलब्ध हों, तो दोहरी भूमिका महिलाओं के लिए केवल तनाव का ही नहीं, अपितु आत्म-सम्मान एवं कौशल-विकास का स्रोत भी बन सकती है।

भारतीय प्रबंधन संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों में हुए अनेक अध्ययनों ने यह भी दर्शाया है कि सूचना प्रौद्योगिकी एवं सेवा क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं में तनाव, बर्नआउट (Burnout) तथा नौकरी छोड़ने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है, विशेषकर विवाह एवं मातृत्व के पश्चात। इसके विपरीत, कुछ अध्ययनों



ने यह भी दिखाया है कि जिन परिवारों में पति एवं वरिष्ठजन घरेलू कार्यों में सहयोग करते हैं तथा जिन संगठनों में लचीली कार्य-नीतियाँ (जैसे कार्य-स्थल पर शिशु-गृह, प्रसूति अवकाश, दूरस्थ कार्य की सुविधा) उपलब्ध हैं, वहाँ महिलाओं का कार्य-जीवन संतुलन अपेक्षाकृत बेहतर रहता है। इस प्रकार विद्यमान साहित्य यह संकेत देता है कि संतुलन की समस्या बहुआयामी है और इसके समाधान हेतु व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा संस्थागत स्तर पर समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है।

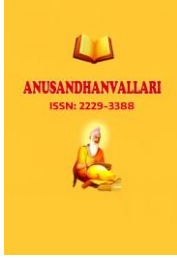
3. शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- भारतीय समाज में कामकाजी महिलाओं की भूमिका में समय के साथ आए परिवर्तनों का ऐतिहासिक एवं समकालीन विश्लेषण करना।
- परिवार और कार्यस्थल के मध्य संतुलन स्थापित करने में कामकाजी महिलाओं के समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना।
- इस संतुलन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा संस्थागत कारकों का परीक्षण करना।
- सरकारी नीतियों, संगठनात्मक उपायों तथा पारिवारिक सहयोग की भूमिका का मूल्यांकन करना।
- संतुलन स्थापित करने हेतु व्यावहारिक सुझाव एवं समाधान प्रस्तुत करना।

4. शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है तथा यह पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसमें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय, जनगणना विभाग, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्टें, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा विश्व बैंक के प्रकाशनों, विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध-पत्रों तथा समाजशास्त्रीय एवं प्रबंधन-संबंधी पुस्तकों का अध्ययन कर सामग्री का संकलन एवं विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए शहरी एवं ग्रामीण, संगठित एवं असंगठित क्षेत्र, तथा विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों की कामकाजी महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।



5. भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

वैदिक काल में महिलाओं को अपेक्षाकृत उच्च सामाजिक स्थान प्राप्त था; गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियों के उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि महिलाएँ शिक्षा एवं दार्शनिक विमर्श में सक्रिय भूमिका निभाती थीं। परंतु उत्तर-वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक विभिन्न सामाजिक-धार्मिक कारणों से महिलाओं की स्थिति में क्रमिक गिरावट आई। पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा तथा शिक्षा से वंचना जैसी कुप्रथाओं ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन से दूर कर घर की चारदीवारी में सीमित कर दिया।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले तथा महात्मा गांधी जैसे समाज-सुधारकों के प्रयासों से महिला शिक्षा एवं समानता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। स्वतंत्रता संग्राम में भी महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने उनकी सामाजिक भूमिका के पुनर्परिभाषण में योगदान दिया। स्वतंत्र भारत के संविधान ने अनुच्छेद 14, 15 तथा 16 के माध्यम से लैंगिक समानता को मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किया, जिसने महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार में भागीदारी हेतु संवैधानिक आधार प्रदान किया।

1970 एवं 1980 के दशक में हरित क्रांति, औद्योगीकरण तथा सरकारी नौकरियों के विस्तार ने महिलाओं को कार्यबल में प्रवेश का अवसर प्रदान किया, यद्यपि यह भागीदारी मुख्यतः शिक्षा, स्वास्थ्य एवं लिपिकीय कार्यों तक सीमित रही। वास्तविक परिवर्तन 1991 के आर्थिक उदारीकरण के पश्चात देखा गया, जब निजी क्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, बीमा तथा सेवा उद्योग के विस्तार ने महिलाओं के लिए विविध एवं उच्च-वेतन वाले रोजगार के अवसर उत्पन्न किए। इक्कीसवीं सदी में डिजिटल क्रांति एवं स्टार्टअप संस्कृति ने महिला उद्यमिता को भी नई दिशा दी है।

6. समकालीन भारत में कामकाजी महिलाओं की बदलती भूमिका

आज भारतीय महिलाएँ लगभग हर पेशेवर क्षेत्र में सक्रिय हैं। चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कानून, पत्रकारिता, बैंकिंग, प्रशासनिक सेवाओं, सशस्त्र बलों, अंतरिक्ष अनुसंधान, राजनीति तथा उद्यमिता जैसे क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी योग्यता का लोहा मनवाया है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) की मंगलयान परियोजना में महिला वैज्ञानिकों की उल्लेखनीय भूमिका, बैंकिंग क्षेत्र में अनेक महिला मुख्य कार्यकारी अधिकारियों की उपस्थिति,

तथा सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में महिला इंजीनियरों एवं प्रबंधकों की बढ़ती संख्या इस बदलाव के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

शहरी मध्यवर्ग में महिलाओं की शिक्षा दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप विवाह की आयु में वृद्धि, कैरियर के प्रति गंभीरता तथा आर्थिक स्वतंत्रता की आकांक्षा भी बढ़ी है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाएँ स्वयं-सहायता समूहों (Self Help Groups), लघु उद्योगों, कृषि-आधारित गतिविधियों तथा सरकारी योजनाओं के माध्यम से आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी कर रही हैं। "मुद्रा योजना" तथा "स्टैंड-अप इंडिया" जैसी योजनाओं ने ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी महिलाओं में उद्यमिता को प्रोत्साहित किया है।

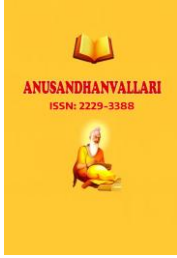
असंगठित क्षेत्र में भी महिलाओं की उल्लेखनीय भागीदारी है- घरेलू सहायिका, निर्माण श्रमिक, कृषि श्रमिक, बीड़ी-उद्योग तथा हस्तशिल्प जैसे क्षेत्रों में लाखों महिलाएँ कार्यरत हैं, यद्यपि इन क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षा एवं वेतन की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कामकाजी महिलाओं की भूमिका केवल शहरी उच्च-शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं, अपितु समाज के हर वर्ग में विस्तृत हो चुकी है, यद्यपि इसकी प्रकृति एवं गुणवत्ता में पर्याप्त भिन्नता विद्यमान है।

भूमिका परिवर्तन केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है; यह पारिवारिक निर्णय-प्रक्रिया में भी परिलक्षित होता है। आज अनेक परिवारों में महत्वपूर्ण वित्तीय एवं जीवन-संबंधी निर्णय, जैसे बच्चों की शिक्षा, संपत्ति निवेश अथवा गृह-निर्माण, में महिलाओं की राय को समान महत्व दिया जाने लगा है। यह परिवर्तन महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप संभव हुआ है, क्योंकि आर्थिक योगदान सामाजिक निर्णय-क्षमता को भी सुदृढ़ करता है।

6.1 क्षेत्रवार विश्लेषण: विभिन्न व्यवसायों में महिलाओं की स्थिति

भिन्न-भिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं की स्थिति, अवसर एवं चुनौतियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकृति की हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र: यह क्षेत्र महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत उच्च वेतन, आधुनिक कार्य-संस्कृति तथा दूरस्थ कार्य की सुविधा प्रदान करता है, परंतु इसमें कार्य-समय की अनिश्चितता, अंतर्राष्ट्रीय ग्राहकों के कारण



रात्रि-पालियों की आवश्यकता तथा तीव्र प्रतिस्पर्धा जैसी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं, जिसके कारण अनेक महिलाएँ मध्य-कैरियर में इस क्षेत्र को छोड़ने का निर्णय लेती हैं।

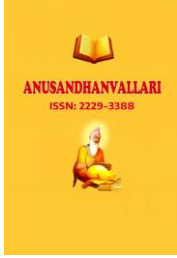
स्वास्थ्य एवं चिकित्सा क्षेत्र: चिकित्सा, नर्सिंग तथा पैरामेडिकल सेवाओं में महिलाओं की भागीदारी परंपरागत रूप से अधिक रही है, किंतु इस क्षेत्र में लंबी एवं अनियमित पाली-व्यवस्था, आपातकालीन कर्तव्य तथा उच्च मानसिक दबाव के कारण कार्य-जीवन संतुलन स्थापित करना विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण होता है, विशेषकर छोटे बच्चों वाली महिला चिकित्सकों एवं नर्सों के लिए।

शिक्षा क्षेत्र: शिक्षण व्यवसाय को परंपरागत रूप से भारतीय समाज में महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत "उपयुक्त" माना जाता रहा है, क्योंकि इसमें विद्यालयी समय-सारणी परिवार के समय के साथ अपेक्षाकृत सुसंगत होती है तथा अवकाश-काल भी उपलब्ध रहता है। यही कारण है कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में महिला शिक्षकों का अनुपात अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक पाया जाता है, यद्यपि उच्च शिक्षा एवं प्रशासनिक पदों पर उनकी भागीदारी अपेक्षाकृत कम है।

बैंकिंग, वित्त एवं प्रशासनिक सेवाएँ: सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकिंग तथा सरकारी प्रशासनिक सेवाओं में निश्चित कार्य-समय, नौकरी की सुरक्षा तथा मातृत्व-संबंधी सुविधाओं के कारण महिलाओं की भागीदारी में निरंतर वृद्धि हुई है। भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), भारतीय पुलिस सेवा (IPS) तथा न्यायपालिका में भी महिलाओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, जो सामाजिक दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन का संकेत है।

उद्यमिता एवं स्टार्टअप क्षेत्र: विगत दशक में महिला उद्यमियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। "मुद्रा योजना", "स्टैंड-अप इंडिया" तथा विभिन्न निजी त्वरक कार्यक्रमों ने महिलाओं को अपने व्यवसाय आरंभ करने हेतु वित्तीय एवं मार्गदर्शन-संबंधी सहायता प्रदान की है। उद्यमिता महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक लचीलापन प्रदान करती है, जिससे वे अपने कार्य-समय को पारिवारिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल सकती हैं, यद्यपि इसमें वित्तीय जोखिम एवं अनिश्चितता भी अधिक होती है।

असंगठित एवं अनौपचारिक क्षेत्र: घरेलू सहायिका, निर्माण-श्रमिक, कृषि-श्रमिक, हस्तशिल्प तथा लघु व्यापार में संलग्न महिलाओं की संख्या भारत में सर्वाधिक है, परंतु इस क्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा, निश्चित वेतन तथा



कानूनी संरक्षण का प्रायः अभाव पाया जाता है। इस वर्ग की महिलाओं के लिए कार्य-जीवन संतुलन की अवधारणा प्रायः "जीविकोपार्जन बनाम देखभाल" के अधिक मौलिक द्वंद्व में परिवर्तित हो जाती है।

7. परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य संतुलन: प्रमुख चुनौतियाँ

कामकाजी महिलाओं के समक्ष परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य संतुलन स्थापित करने की चुनौती बहुआयामी है। इसे निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है-

7.1 दोहरे दायित्व का बोझ

भारतीय सामाजिक संरचना में आज भी घरेलू कार्यों, बाल-देखभाल तथा वृद्धजनों की सेवा का दायित्व मुख्यतः महिलाओं पर ही केंद्रित है, चाहे वे कामकाजी हों अथवा नहीं। समय-उपयोग सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि कामकाजी महिलाएँ भी पुरुषों की तुलना में घरेलू कार्यों में कहीं अधिक समय व्यतीत करती हैं। इस स्थिति को "दोहरा बोझ" कहा जाता है, जिसके कारण महिलाओं के पास व्यक्तिगत विश्राम, सामाजिक जीवन अथवा आत्म-विकास हेतु समय अत्यंत सीमित रह जाता है।

7.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक अपेक्षाएँ

भारतीय समाज में आज भी "आदर्श स्त्री" की छवि परिवार-केंद्रित मानी जाती है। एक कामकाजी महिला से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कार्यालय के कार्यों में दक्षता दिखाने के साथ-साथ एक "अच्छी पत्नी", "अच्छी माँ" तथा "अच्छी बहू" की भूमिका भी सफलतापूर्वक निभाए। इन परस्पर विरोधी अपेक्षाओं के कारण महिलाओं में अपराध-बोध (Guilt), आत्म-संदेह तथा मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। विशेषकर मातृत्व के पश्चात कार्यस्थल पर वापसी करने वाली महिलाओं को समाज तथा परिवार दोनों से मिश्रित प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ता है।

7.3 कार्यस्थल पर संरचनात्मक बाधाएँ

अनेक संगठनों में अब भी लचीले कार्य-समय, दूरस्थ कार्य अथवा गुणवत्तापूर्ण शिशु-देखभाल केंद्रों जैसी सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, वेतन-असमानता, पदोन्नति में बाधा (जिसे "काँच की छत" अथवा Glass Ceiling कहा जाता है) तथा कभी-कभी यौन उत्पीड़न जैसी समस्याएँ भी महिलाओं के व्यावसायिक विकास एवं मानसिक शांति को प्रभावित करती हैं। विवाह अथवा मातृत्व के पश्चात नियोक्ताओं द्वारा महिलाओं की प्रतिबद्धता पर संदेह करना भी एक सामान्य किंतु गंभीर समस्या है।

7.4 समय-प्रबंधन एवं यात्रा संबंधी कठिनाइयाँ

विशेषकर बड़े महानगरों में लंबी यात्रा-अवधि, यातायात-जाम तथा असुरक्षित सार्वजनिक परिवहन कामकाजी महिलाओं के समय एवं ऊर्जा को अतिरिक्त रूप से प्रभावित करते हैं। कार्यालय से घर लौटने के पश्चात भी घरेलू कार्यों में संलग्न होने के कारण महिलाओं की नींद, स्वास्थ्य तथा विश्राम पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो दीर्घकालिक रूप से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को जन्म दे सकता है।

7.5 सहायता तंत्र का अभाव

संयुक्त परिवार प्रणाली के क्षरण एवं एकल परिवारों के बढ़ते प्रचलन के कारण बच्चों तथा वृद्धजनों की देखभाल में परिवार के अन्य सदस्यों से मिलने वाला पारंपरिक सहयोग अब कम उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में कामकाजी महिलाओं को क्रेच, आया अथवा भुगतान-आधारित देखभाल सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है, जो प्रायः महँगी एवं अपर्याप्त रूप से नियंत्रित होती हैं। यह स्थिति विशेषकर मध्यम एवं निम्न आय वर्ग की महिलाओं के लिए अधिक कठिन सिद्ध होती है।

8. संतुलन को सुगम बनाने वाले सकारात्मक कारक

यद्यपि चुनौतियाँ अनेक हैं, तथापि विगत वर्षों में कुछ सकारात्मक परिवर्तन एवं सहायक कारक भी उभरे हैं, जिन्होंने कामकाजी महिलाओं के जीवन को अपेक्षाकृत सुगम बनाया है।

8.1 सरकारी नीतियाँ एवं कानूनी प्रावधान

भारत सरकार ने महिलाओं के हितों की रक्षा हेतु अनेक कानूनी प्रावधान लागू किए हैं। मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017 के अंतर्गत सवैतनिक मातृत्व अवकाश की अवधि को 12 सप्ताह से बढ़ाकर 26 सप्ताह कर दिया गया है, जो विश्व के सर्वाधिक उदार प्रावधानों में से एक है। कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013 ने कार्यस्थल को सुरक्षित बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है। इसके अतिरिक्त समान वेतन अधिनियम तथा विभिन्न श्रम संहिताओं में महिलाओं के हितों की सुरक्षा हेतु प्रावधान किए गए हैं। "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ", "प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना" तथा "स्किल इंडिया" जैसी योजनाएँ भी महिला शिक्षा एवं कौशल विकास को बढ़ावा दे रही हैं।

8.2 प्रौद्योगिकी एवं लचीले कार्य-प्रारूप

कोविड-19 महामारी के पश्चात दूरस्थ कार्य (Work From Home) एवं संकर कार्य-प्रारूप (Hybrid Model) की स्वीकार्यता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस परिवर्तन ने अनेक कामकाजी महिलाओं को यात्रा-समय की बचत के साथ-साथ घरेलू दायित्वों एवं व्यावसायिक कार्यों के मध्य बेहतर तालमेल बिठाने का अवसर प्रदान किया है। डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन शिक्षा तथा घरेलू सेवाओं हेतु मोबाइल एप्लिकेशन जैसी सुविधाओं ने भी दैनिक जीवन के प्रबंधन को अपेक्षाकृत सरल बनाया है।

8.3 बदलती पारिवारिक मानसिकता एवं पुरुषों की भागीदारी

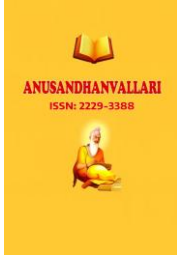
शहरी एवं शिक्षित वर्ग में धीरे-धीरे इस विचार को स्वीकृति मिल रही है कि घरेलू कार्य एवं बाल-पालन केवल स्त्री का ही उत्तरदायित्व नहीं, अपितु दोनों साझेदारों का संयुक्त दायित्व है। युवा पीढ़ी में पतियों की घरेलू कार्यों तथा बाल-देखभाल में सक्रिय भागीदारी की प्रवृत्ति बढ़ रही है, यद्यपि यह परिवर्तन अभी भी सीमित एवं क्षेत्रीय असमानताओं से युक्त है। जिन परिवारों में यह साझेदारी विद्यमान है, वहाँ महिलाओं का कार्य-जीवन संतुलन अपेक्षाकृत बेहतर तथा तनाव-स्तर कम पाया गया है।

8.4 संगठनात्मक पहल

अनेक कॉर्पोरेट संगठनों ने महिला-हितैषी नीतियाँ अपनाई हैं, जिनमें ऑन-साइट शिशु-देखभाल केंद्र, लचीले कार्य-समय, "रिटर्नशिप" कार्यक्रम (जो मातृत्व अवकाश के पश्चात महिलाओं को कार्यबल में पुनः शामिल होने में सहायता करते हैं), तथा महिला नेतृत्व-विकास कार्यक्रम सम्मिलित हैं। सूचना प्रौद्योगिकी एवं बैंकिंग जैसे क्षेत्रों की अनेक कंपनियाँ अब विविधता एवं समावेशन (Diversity and Inclusion) को अपनी संस्थागत रणनीति का अभिन्न अंग मानती हैं, जिसका सकारात्मक प्रभाव महिला कर्मचारियों की कार्य-संतुष्टि पर पड़ता है।

8.5 महिला-नेतृत्व एवं रोल मॉडल का प्रभाव

विभिन्न क्षेत्रों में सफल महिला नेतृत्वकर्ताओं की बढ़ती दृश्यता ने भी सामाजिक मानसिकता को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जब युवा लड़कियाँ अपने आस-पास अथवा मीडिया में महिला वैज्ञानिकों, उद्यमियों, प्रशासनिक अधिकारियों अथवा खिलाड़ियों को सफलता प्राप्त करते देखती हैं, तो यह उनकी कैरियर-आकांक्षाओं को नया आयाम प्रदान करता है, जिसे समाजशास्त्र की भाषा में "रोल मॉडल प्रभाव" कहा जाता है। अनेक कॉर्पोरेट संगठनों में अब औपचारिक मेंटरशिप कार्यक्रम चलाए जाते हैं, जिनमें वरिष्ठ महिला अधिकारी



युवा महिला कर्मचारियों का मार्गदर्शन करती हैं, जिससे उन्हें कैरियर-योजना, नेतृत्व-कौशल तथा कार्य-जीवन संतुलन संबंधी व्यावहारिक सुझाव प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त, महिला व्यावसायिक नेटवर्क तथा उद्योग-संघों ने भी महिलाओं के मध्य अनुभव-साझाकरण एवं पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा दिया है। ऐसे मंच महिलाओं को यह अनुभव कराने में सहायक होते हैं कि कार्य-जीवन संतुलन की चुनौती केवल उनकी व्यक्तिगत समस्या नहीं, अपितु एक व्यापक सामाजिक परिघटना है, जिसका सामना अनेक अन्य महिलाएँ भी कर रही हैं। इस सामूहिक जागरूकता ने नीति-निर्माताओं तथा नियोक्ताओं पर भी अनुकूल परिवर्तन हेतु दबाव बनाने में योगदान दिया है।

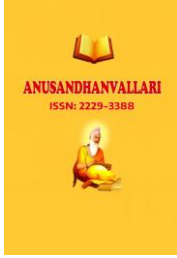
9. शहरी एवं ग्रामीण संदर्भ में तुलनात्मक विश्लेषण

शहरी क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं को औपचारिक क्षेत्र में रोजगार, बेहतर वेतन, कानूनी सुरक्षा तथा अपेक्षाकृत आधुनिक सामाजिक दृष्टिकोण का लाभ प्राप्त होता है, परंतु उन्हें उच्च जीवन-यापन व्यय, आवास एवं देखभाल सेवाओं की महँगाई तथा एकल परिवार प्रणाली में सहयोग के अभाव जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ प्रायः असंगठित क्षेत्र- कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प अथवा लघु व्यवसाय- में संलग्न रहती हैं, जहाँ सामाजिक सुरक्षा एवं औपचारिक कानूनी संरक्षण अपेक्षाकृत सीमित है। तथापि ग्रामीण क्षेत्रों में संयुक्त परिवार प्रणाली अभी भी अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है, जिससे बाल-देखभाल एवं घरेलू कार्यों में पारिवारिक सहयोग कुछ हद तक अधिक उपलब्ध रहता है, यद्यपि यह सहयोग प्रायः सामाजिक नियंत्रण की कीमत पर प्राप्त होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि "कार्य-जीवन संतुलन" की अवधारणा तथा उसकी चुनौतियाँ शहरी एवं ग्रामीण संदर्भों में भिन्न रूप धारण करती हैं, और नीति-निर्माण करते समय इस क्षेत्रीय विविधता को ध्यान में रखना आवश्यक है।

9.1 अंतर्राष्ट्रीय तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

भारत में महिला श्रम-बल भागीदारी दर की तुलना जब अन्य देशों से की जाती है, तो कुछ महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं। नॉर्डिक देशों- जैसे स्वीडन, नॉर्वे तथा डेनमार्क- में सार्वजनिक रूप से वित्त-पोषित बाल-देखभाल व्यवस्था, समान रूप से विभाजित माता-पिता अवकाश (Parental Leave) तथा लैंगिक समानता को बढ़ावा देने वाली नीतियों के कारण महिला श्रम-बल भागीदारी दर विश्व में सर्वाधिक पाई जाती है। इसके विपरीत,



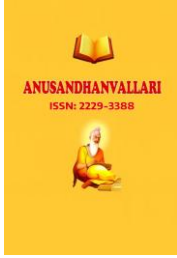
दक्षिण एशिया के अनेक देशों में, जिसमें भारत भी सम्मिलित है, सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों, सुरक्षा संबंधी चिंताओं तथा देखभाल-सेवाओं के अभाव के कारण यह दर अपेक्षाकृत निम्न बनी हुई है।

चीन जैसे देश में, जहाँ ऐतिहासिक रूप से महिलाओं की कार्यबल भागीदारी अधिक रही है, वहाँ भी हाल के वर्षों में जनसांख्यिकीय नीतियों तथा बाल-देखभाल संबंधी दबावों के कारण चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। पश्चिमी देशों में भी, यद्यपि लैंगिक समानता की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, फिर भी "काँच की छत" तथा वेतन-असमानता जैसी समस्याएँ पूर्णतः समाप्त नहीं हुई हैं। इस तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सशक्त सार्वजनिक नीतियाँ- विशेषकर सुलभ एवं किफायती देखभाल-अवसंरचना- महिला श्रम-बल भागीदारी तथा कार्य-जीवन संतुलन को सुधारने में निर्णायक भूमिका निभा सकती हैं, और भारत इन अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों से महत्वपूर्ण सीख ले सकता है।

10. मनोवैज्ञानिक एवं स्वास्थ्य संबंधी प्रभाव

परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य असंतुलन का प्रत्यक्ष प्रभाव कामकाजी महिलाओं के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। दीर्घकालिक तनाव, अनिद्रा, चिंता, अवसाद जैसी स्थितियाँ उन महिलाओं में अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती हैं जिन्हें पर्याप्त सामाजिक अथवा पारिवारिक सहयोग प्राप्त नहीं होता। अपराध-बोध की भावना-विशेषकर बच्चों को पर्याप्त समय न दे पाने के संदर्भ में- अनेक कामकाजी माताओं में एक सामान्य मनोवैज्ञानिक अनुभव है। साथ ही, निरंतर बहु-कार्यण (Multitasking) एवं समय के दबाव के कारण शारीरिक थकान, सिरदर्द तथा प्रतिरक्षा-तंत्र से संबंधित समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। इन प्रभावों को ध्यान में रखते हुए संगठनों तथा परिवारों दोनों स्तरों पर मानसिक स्वास्थ्य के प्रति संवेदनशीलता विकसित करना अत्यंत आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक समर्थन के अभाव में अनेक कामकाजी महिलाएँ सामाजिक अलगाव (Social Isolation) का भी अनुभव करती हैं, क्योंकि कार्यालय एवं घर के मध्य समय के बँटवारे में सखी-मंडली, पारिवारिक समारोहों अथवा व्यक्तिगत शौक हेतु समय अत्यंत सीमित रह जाता है। दीर्घकाल में यह स्थिति आत्म-पहचान के संकट को भी जन्म दे सकती है, विशेषकर उन महिलाओं में जो कैरियर एवं मातृत्व दोनों में उत्कृष्टता की सामाजिक अपेक्षाओं का दबाव अनुभव करती हैं। सकारात्मक पक्ष यह है कि जब कार्यस्थल पर सहानुभूतिपूर्ण नेतृत्व, सहकर्मियों का सहयोग तथा स्पष्ट संचार उपलब्ध होता है, तो महिलाएँ अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से इन



दबावों का सामना करने में सक्षम होती हैं, जो यह दर्शाता है कि संस्थागत वातावरण मानसिक स्वास्थ्य पर पारिवारिक वातावरण जितना ही प्रभाव डालता है।

10.1 सांकेतिक उदाहरण: तीन भिन्न परिस्थितियाँ

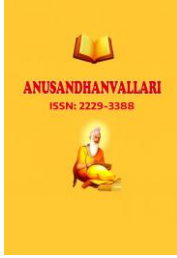
विषय की व्यावहारिक समझ हेतु तीन काल्पनिक किंतु प्रतिनिधिक परिस्थितियों पर विचार किया जा सकता है, जो भारतीय कामकाजी महिलाओं की विविध वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करती हैं। पहला उदाहरण एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्यरत शहरी सॉफ्टवेयर इंजीनियर का है, जिसे संगठन से दूरस्थ कार्य तथा लचीले समय की सुविधा तो प्राप्त है, परंतु अंतर्राष्ट्रीय दल के साथ समन्वय हेतु प्रायः रात्रि में भी बैठकों में सम्मिलित होना पड़ता है, जिससे उसके पारिवारिक समय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। दूसरा उदाहरण एक सरकारी विद्यालय की शिक्षिका का है, जिसे निश्चित कार्य-समय एवं विद्यालयी अवकाश का लाभ मिलता है, परंतु ग्रामीण क्षेत्र में परिवहन-सुविधा की कमी तथा संयुक्त परिवार में वृद्ध सास-ससुर की देखभाल का अतिरिक्त दायित्व उसकी चुनौतियों को जटिल बनाता है। तीसरा उदाहरण एक शहरी मलिन बस्ती में रहने वाली घरेलू सहायिका का है, जो प्रतिदिन कई घरों में कार्य करती है, जिसे न तो सवैतनिक अवकाश प्राप्त है और न ही कोई औपचारिक सामाजिक सुरक्षा, तथा जिसके लिए "संतुलन" की अवधारणा प्रायः जीविका के प्रश्न में विलीन हो जाती है।

ये तीनों उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि "कार्य-जीवन संतुलन" एक समान शब्दावली प्रतीत होती है, इसकी वास्तविक अभिव्यक्ति सामाजिक-आर्थिक स्थिति, भौगोलिक अवस्थिति तथा व्यावसायिक क्षेत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। अतः किसी भी नीति अथवा समाधान को इस विविधता के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है, ताकि वह केवल विशेषाधिकार-प्राप्त शहरी वर्ग तक सीमित न रहकर समाज के सभी स्तरों की कामकाजी महिलाओं के लिए सार्थक सिद्ध हो सके।

11. सुझाव एवं समाधान

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य बेहतर संतुलन स्थापित करने हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं-

- पारिवारिक स्तर पर घरेलू कार्य एवं बाल-देखभाल के दायित्वों का न्यायसंगत बँटवारा किया जाए, जिसमें पति एवं परिवार के अन्य सदस्यों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित हो।

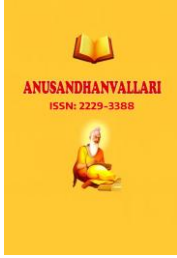


- संगठनों को लचीले कार्य-समय, दूरस्थ कार्य की सुविधा, गुणवत्तापूर्ण शिशु-देखभाल केंद्र तथा मातृत्व-पश्चात पुनर्समावेशन कार्यक्रम अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराने चाहिए।
- सरकार द्वारा किफायती एवं सुलभ बाल-देखभाल तथा वृद्ध-देखभाल सेवाओं का विस्तार किया जाए, विशेषकर मध्यम एवं निम्न आय वर्ग के लिए।
- कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव तथा यौन उत्पीड़न विरोधी कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए।
- स्कूली एवं उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में लैंगिक समानता तथा साझा पारिवारिक उत्तरदायित्व से संबंधित मूल्यों को सम्मिलित किया जाए ताकि भावी पीढ़ी में समतामूलक दृष्टिकोण विकसित हो सके।
- कामकाजी महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य हेतु परामर्श सेवाएँ तथा जागरूकता कार्यक्रम कार्यस्थल पर सुलभ कराए जाएँ।
- मीडिया एवं जन-संचार माध्यमों के द्वारा कामकाजी महिलाओं तथा साझा घरेलू दायित्व की सकारात्मक छवि प्रस्तुत की जाए ताकि सामाजिक मानसिकता में क्रमिक परिवर्तन को बढ़ावा मिल सके।
- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं हेतु सामाजिक सुरक्षा, न्यूनतम वेतन तथा स्वास्थ्य बीमा जैसी सुविधाओं का विस्तार किया जाए।

12. भविष्य की दिशा: दीर्घकालिक परिवर्तन के संकेत

आगामी दशकों में भारतीय समाज में कामकाजी महिलाओं की स्थिति में और अधिक परिवर्तन की संभावना है। जनसांख्यिकीय लाभांश, बढ़ती शहरीकरण दर, डिजिटल साक्षरता का विस्तार तथा शिक्षा में लैंगिक अंतराल के निरंतर कम होने जैसे कारक महिलाओं की श्रम-बल भागीदारी को आगे भी बढ़ावा देंगे। कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं स्वचालन जैसी नई प्रौद्योगिकियाँ जहाँ एक ओर कुछ पारंपरिक रोजगारों को प्रभावित कर सकती हैं, वहीं दूसरी ओर वे लचीले, दूरस्थ एवं कौशल-आधारित रोजगार के नए अवसर भी उत्पन्न कर रही हैं, जो महिलाओं के लिए विशेष रूप से लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं यदि समयानुकूल कौशल-प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाए।

साथ ही, पीढ़ीगत परिवर्तन भी एक महत्वपूर्ण कारक है। वर्तमान युवा पीढ़ी, जो अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित तथा वैश्विक दृष्टिकोण से परिचित है, लैंगिक भूमिकाओं के प्रति परंपरागत पीढ़ी की तुलना में कहीं अधिक समतामूलक दृष्टिकोण रखती है। यह परिवर्तन विवाह के पश्चात दायित्वों के बँटवारे, संयुक्त निर्णय-प्रक्रिया तथा



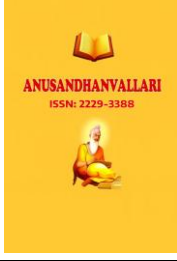
कैरियर की समान प्राथमिकता जैसे पहलुओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। यद्यपि यह परिवर्तन अभी शहरी, शिक्षित एवं उच्च-मध्यवर्गीय समुदायों तक अधिक सीमित है, फिर भी समय के साथ इसके व्यापक सामाजिक स्तर पर प्रसारित होने की संभावना है, विशेषकर शिक्षा एवं डिजिटल संपर्क के माध्यम से।

13. निष्कर्ष

भारतीय समाज में कामकाजी महिलाओं की भूमिका में विगत कुछ दशकों में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। शिक्षा, आर्थिक अवसरों तथा कानूनी सुरक्षा के विस्तार ने महिलाओं को सार्वजनिक एवं व्यावसायिक जीवन में सक्रिय भागीदार बनाया है। स्वतंत्रता-पूर्व काल की उस महिला की तुलना में, जिसकी दुनिया प्रायः घर की चारदीवारी तक सीमित थी, आज की कामकाजी महिला कक्षा, प्रयोगशाला, न्यायालय, अस्पताल, कॉर्पोरेट कार्यालय तथा अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र तक- हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। यह परिवर्तन केवल आँकड़ों तक सीमित नहीं, अपितु भारतीय समाज की सामूहिक चेतना में आए गहरे बदलाव का प्रतिबिंब भी है।

तथापि यह परिवर्तन अभी अधूरा है, क्योंकि घरेलू क्षेत्र में लैंगिक श्रम-विभाजन की पारंपरिक संरचना में अपेक्षित गति से परिवर्तन नहीं हो पाया है। परिणामस्वरूप कामकाजी महिलाओं को परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य संतुलन स्थापित करने हेतु निरंतर संघर्ष करना पड़ता है, जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य, कैरियर-विकास तथा समग्र जीवन-गुणवत्ता पर पड़ता है। यह असंतुलन केवल व्यक्तिगत असुविधा का विषय नहीं, अपितु एक संरचनात्मक समस्या है, जो यह दर्शाती है कि आर्थिक परिवर्तन जितनी तीव्र गति से हुआ है, सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन उतनी ही धीमी गति से हो रहा है। यही अंतराल- आर्थिक आधुनिकता एवं सामाजिक परंपरा के मध्य की खाई- वर्तमान भारतीय कामकाजी महिला के जीवन के केंद्रीय द्वंद्व का निर्माण करता है।

यह स्पष्ट है कि इस समस्या का समाधान केवल व्यक्तिगत स्तर पर संभव नहीं है; इसके लिए पारिवारिक मानसिकता में परिवर्तन, संगठनात्मक नीतियों में सुधार, प्रभावी सरकारी हस्तक्षेप तथा व्यापक सामाजिक जागरूकता की आवश्यकता है। जब परिवार, कार्यस्थल एवं समाज तीनों स्तरों पर समन्वित प्रयास किए जाएँगे, तभी कामकाजी महिलाएँ अपनी पेशेवर आकांक्षाओं एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों के मध्य वास्तविक एवं सतत संतुलन स्थापित कर सकेंगी। यह न केवल महिलाओं के व्यक्तिगत सशक्तीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, अपितु राष्ट्र की समग्र आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए भी अनिवार्य है, क्योंकि किसी भी समाज की वास्तविक उन्नति उसकी आधी जनसंख्या- अर्थात् महिलाओं- की भागीदारी एवं भलाई पर ही निर्भर करती है।



संदर्भ सूची (References)

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO). (2023). Care Work and Care Jobs Report. जिनेवा: ILO प्रकाशन।
2. भारत सरकार, सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS) वार्षिक रिपोर्ट, विभिन्न वर्ष।
3. देसाई, नीरा एवं कृष्णराज, मैत्रेयी। भारतीय समाज में महिला। मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन।
4. Hochschild, A. R. (1989). The Second Shift: Working Parents and the Revolution at Home. न्यूयॉर्क: Viking Penguin.
5. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार। वार्षिक रिपोर्ट, विभिन्न वर्ष।
6. मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017, भारत का राजपत्र।
7. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013।
8. विश्व बैंक। (2022). Female Labor Force Participation in South Asia. वाशिंगटन डी.सी.: विश्व बैंक प्रकाशन।
9. जनगणना विभाग, भारत सरकार। जनगणना आँकड़े, 2011 एवं संबंधित विश्लेषणात्मक रिपोर्टें।